"गौड़ीय कृष्ण - भक्ति काव्य पर बौद्ध - धर्म का प्रभाव"

1. पूर्व कथन :

हमने पूर्व अध्याय में देखा कि कृष्ण-भक्ति का जो स्वरूप मध्यकाल तक स्थापित हो चुका था, वह रागात्मक था। जो बौद्धों के तांत्रिक-सम्प्रदायों में प्रचलित राग - साधना का एक संस्कारित रूप था। बंगाल व उड़ीसा बौद्ध-तांत्रिकों के प्रभावशाली क्षेत्र थे। जब वहाँ पर विशेष परिस्थितियों के कारण इन्हीं तांत्रिक बौद्धों ने वैष्णव - सहजिया नाम धारण कर लिया तब उनकी तांत्रिक राग - साधना (प्रज्ञोपाय साधना) राधा-माधव के रूप में परिवर्तित हो गयी। जैसा हम पहले भी संकेत कर चुके हैं कि राधा और माधव के युगल-स्वरूप के गीत सर्वप्रथम पूर्वी प्रदेशों के भक्तों अथवा कवियों की वाणी से प्रस्फुटित हुए। ये कवि (जयदेव, विद्यापति और चण्डीदास आदि) वैष्णव सहजियाओं की परम्परा में आते हैं। इस प्रकार बौद्ध तांत्रिकों की बौद्ध-सहजयान शाखा जब वैष्णव सहजिया नाम-रूप धारण करके सामने आयी तब तक भी वह अपने पूर्व प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकी।[1] उनके प्रज्ञा-उपाय अब राधा-माधव (अथवा शक्ति तथा शक्तिमान) बन गये और राग-साधना यथावत चलती रही। इस प्रकार बौद्ध तांत्रिकों की युगनद्ध साधना कृष्ण भक्ति में अथवा वैष्णव भक्ति परम्परा में प्रविष्ट हुई। "उड़ीसा के धर्माचार्यों ने चैतन्य और नागार्जुन दोनों के मतों के समन्वय से एक विशाल वैष्णव-बौद्ध साहित्य तैयार किया"।[2] चैतन्य वैष्णव सहजियापंथियों (चण्डीदास जयदेव विद्यापति) के काव्य गीतों से अत्यधिक प्रभावित थे। चैतन्य की कृष्ण भक्ति ने आगे चलकर वृन्दावन (उत्तरी भारत) की कृष्ण भक्ति को प्रभावित किया। चैतन्य सम्प्रदाय में युगल स्वरूप की साधना का विशिष्ट महत्व रहा है। इसलिए हम कह सकते हैं कि पूर्वी-प्रदेशों के बौद्ध-तांत्रिकों की राग साधना पूर्वी सहजियाओं से उत्तरी भारत में फैली। अतः मध्यकालीन

1- दे० डॉ० सत्येन्द्र - बंगला साहित्य का संक्षिप्त इतिहास - पृष्ठ 12

2- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी - सूर साहित्य - पृष्ठ 92

कृष्ण-भक्ति काव्य पर जो प्रभाव सर्वाधिक खोजा जा सकता है, वह इन बौद्ध-तांत्रिकों की राग-साधना को ध्यान में रख कर खोजा जा सकता है । जैसा पहले कहा जा चुका है, बंगाल बौद्ध-तांत्रिकों (तांत्रिक सम्प्रदायों) का प्रभावशाली गढ़ था । इनका प्रभाव वहाँ काफी बाद तक बना रहा और बाद में वह वैष्णवों में रूपान्तरित हो गया । जैसा कि डॉ० रामरतन भटनागर का कथन है - "बौद्ध-धर्म के खण्डहरों पर ही हिन्दू नवोत्थान का जन्म हुआ जिसका एक प्रमुख अग्रस्तम्भ वैष्णव संस्कृति थी"।[1] इस परम्परा में आने वालों को हम "नव-वैष्णव" अथवा "नये भागवत" भी कह सकते हैं । नई वैष्णवता मध्ययुग के लिए युग-धर्म बन गई"।[2]

सामान्य रूप से हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल की गणना विद्वानों द्वारा सन् 1375 ई० से लेकर सन् 1700 ई० तक निश्चित की गई है ।[3] भक्तिकाल के अन्तर्गत मुख्य रूप से भक्ति की जो दो शाखाएँ प्रसिद्ध हुईं, वे इस प्रकार हैं - (1) निर्गुण भक्ति धारा और (2) सगुण भक्ति धारा । क्रमशः एक ने ईश्वर के निर्गुण निराकार रूप को मान्यता दी, तो दूसरी धारा ईश्वर के सगुण रूप का गुणगान करती हुई आगे बढ़ी । निर्गुण भक्ति में भी दो अन्य शाखाएँ विकसित हुईं । पहली ज्ञानाश्रयी और दूसरी प्रेमाश्रयी । ज्ञानाश्रयी शाखा के अन्तर्गत कबीर, नानक, रैदास आदि भक्तों के नाम आते हैं । प्रेमाश्रयी शाखा के अन्तर्गत सूफी भक्तों की गणना की जाती हैं - जैसे जायसी, उस्मान, कुतुबन आदि । भक्तिकाल में भक्ति की दूसरी मुख्य धारा सगुण भक्ति की थी । इसकी भी दो शाखाएँ विकसित हुईं, उनमें से पहली थी - कृष्णाश्रयी और दूसरी शाखा थी - रामाश्रयी । कृष्णाश्रयी शाखा के अन्तर्गत भक्तों अथवा कवियों ने कृष्ण को अपना आराध्य स्वीकार करते हुए कृष्ण भक्ति काव्य की रचना की । रामभक्ति शाखा में राम आराध्य बने व उनका यशो-गान रामभक्तों ने किया - जिनमें तुलसीदास प्रमुख हैं । रामभक्ति काव्य की अपेक्षा

1- मध्ययुगीन वैष्णव संस्कृति और तुलसीदास - पृष्ठ 12
2- मध्ययुगीन वैष्णव संस्कृति और तुलसीदास - पृष्ठ 12
3- दे० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास

कृष्णभक्ति काव्य का सृजन अधिक हुआ तथा उसका प्रचार-प्रसार भी रामभक्ति की अपेक्षा अधिक हुआ। विशेष बात यह है कि कृष्ण-भक्त कवियों ने श्रीकृष्ण के अनेक स्वरूपों के यशोगान के साथ-साथ उनके जिस रूप को विशिष्ट महत्त्व दिया, वह था उनका युगल स्वरूप। विविध रूपों में कृष्ण-राधा अथवा कृष्ण व गोपियों के प्रेम-प्रसंगों, उनकी केलि क्रीडाओं का वर्णन किया गया। इसके लिए श्रीमद् भागवत् और विशेष रूप से भागवत् के दशम स्कन्ध को आधार बना कर काव्य सृजन किया गया। इस विचार-धारा (राग-साधना) से प्रभावित हिन्दी साहित्य के मध्यकालीन कृष्ण-भक्ति काव्य के अन्तर्गत जिन सम्प्रदायों का समावेश होता है, वे इस प्रकार हैं -

1- गौड़ीय सम्प्रदाय
2- पुष्टिमार्गीय सम्प्रदाय
3- राधावल्लभीय सम्प्रदाय
4- हरिदासी सम्प्रदाय

ऐतिहासिक दृष्टि से यहाँ सर्वप्रथम हम चैतन्य महाप्रभु द्वारा संस्थापित गौड़ीय सम्प्रदाय पर विचार करेंगे।

2) <u>महाप्रभु चैतन्य देव का संक्षिप्त परिचय</u> :

मध्यकालीन कृष्णभक्ति का जो स्त्रोत पूर्वी भारत में बहा, उसके प्रणेता थे - श्री चैतन्य देव, तथा उनके सहकारी बंगीय महानुभव। चैतन्य का जन्म नदिया के एक पवित्र ब्राह्मण कुल में संवत् 1542 (1485 ई0) में हुआ। उनका बाल्यकाल का नाम था - विश्वम्भर मिश्र। नदिया के प्रख्यात पण्डित गंगाधर से आपने विद्याध्ययन किया था। समस्त शास्त्रों में, विशेष रूप से तर्क शास्त्र में बड़ी विलक्षणता प्राप्त की। दुर्दान्त पण्डितों को शास्त्र में ज हराया था। . . . . . वि0 1564 (सन् 1507 ई0) में अपने पिता के श्राद्ध करने के लिए वे गया धाम गये और वहाँ आपका ईश्वरपुरी से साक्षात्कार हुआ। वे उनकी भक्ति-भावना तथा वैराग्य के नितान्त पक्षपाती थे। इस गया यात्रा ने विश्वम्भर को प्रपंच से हटाकर भगवान श्रीकृष्णकी ओर स्वत: अग्रसर किया। ईश्वरपुरीजी ही इसकी वैष्णव दीक्षा के गुरु हुए। वि0 सं0 1566

8

(1508 ई०) में इन्होंने पुरी जी के गुरुभाई केशव भारतीजी से संन्यास की दीक्षा ग्रहण की ।[1]

चैतन्य देव के पूर्व से बंगाल में वैष्णव सम्प्रदाय की एक शाखा "सहजिया" के नाम से चली आ रही थी, जिसके प्रमुख कवि चण्डीदास थे । इन्होंने कृष्ण व राधा से सम्बन्ध रखने वाले अनेक पदों की रचना की थी । इनके प्रेम का स्वरूप उस स्वच्छन्द, किन्तु स्वाभाविक अनुराग की ओर संकेत करता है जो एक परकीया नायिका का अपने प्रेम पात्र व प्रेमी के प्रति हुआ करता है । प्रेम की इस सहज स्वाभाविकता के कारण उसे सहज भाव का नाम दिया गया और सहज शब्द के ही महत्व से इसका नाम सहजिया सम्प्रदाय पड़ा ।[2]

वस्तुत: वैष्णव सहजियायियों के सहजभाव में वही भाव था जो बौद्ध-धर्म की सहजयान शाखा के अन्तर्गत परमतत्व समझे जाने वाले (शून्य के स्थान पर) महासुख के रूप में स्वीकृत था । अत: जिस प्रकार बौद्ध-सहजयान में प्रज्ञा व उपाय का युगनद्ध रूप (सहजरूप) उनकी साधना का परम ध्येय बना, उसी प्रकार जब बौद्ध-सहजयान "वैष्णव सहजिया" में रूपान्तरित हो गया तो पूर्व "प्रज्ञा" व "उपाय" का स्थान राधा-माधव ने ले लिया और इन दोनों के सहज स्वाभाविक सम्बन्धों को भक्ति का नाम देकर उनके राग सम्बन्धों का वर्णन किया जाने लगा । आगे चलकर यही राधा-माधव मध्यकालीन कृष्णभक्ति के राधा-कृष्ण बने । "अब वैष्णव सहजयायियों ने बौद्धों के गुप्त चन्द्रपुर को नित्य-वृन्दावन में बदल दिया, जहाँ राधा कृष्ण का नित्य मिलन होता रहता है ।[3] वस्तुत: वैष्णव सहजिया-सम्प्रदाय ने बौद्ध सहजिया यौगिक-क्रिया में ग्राह्य काम-वासना से प्रेम की भावना ग्रहण कर ली और उसे आध्यात्मिक रूप दे दिया ।[4]

1- आचार्य बलदेव उपाध्याय - "भागवत सम्प्रदाय" - पृष्ठ 50।
2- आचार्य परशुराम चतुर्वेदी - उत्तरी भारत की सन्त परम्परा - पृष्ठ 9।
3- डॉ० रतिभानुसिंह नाहर - भक्ति आन्दोलन का अध्ययन - पृष्ठ 219
4- डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि - पृ० 268

चण्डीदास जैसे कवियों ने मानवीय प्रेम को आध्यात्मिक रूप देकर राधा-कृष्ण के प्रेम का अमर वर्णन किया । वैष्णव सहजयान के प्रमुख कवियों ।जिनका उल्लेख हम पहले भी कर चुके हैं, चण्डीदास, विद्यापति, जयदेव आदि। के काव्य गीतों का चैतन्य पर गहरा प्रभाव था, जिसने चैतन्य की भक्ति भावना को गहरे रूप में प्रभावित किया ।

चैतन्य की आराधना "राधाभाव" की आराधना थी । स्वयं को राधा मानकर कृष्ण के प्रति राधा की तरह आकर्षित होना, उनकी भक्ति का स्वरूप था । इनके दर्शन को अचिन्त्य भेदाभेद के नाम से जाना जाता है । चैतन्य की साधना में संकीर्तन का बड़ा महत्व था, इस पर हम आगे विचार करेंगे, किन्तु जैसा कि डॉ० सत्येन्द्र का मानना है - "पद कीर्तन और कीर्तन मण्डलियों का प्रचलन चैतन्य से पूर्व था । पाल आदि राजाओं के समय में महीपाल आदि राजाओं के कीर्तन का संकेत मिलता है । साथ ही बौद्ध सिद्धों के पदों में गाने-नाचने का उल्लेख उनके कीर्तनों के तथ्य को बतलाता है । अतः चैतन्य को जो कीर्तन की परम्परा मिली थी, वह वैष्णवों के द्वारा विकसित और प्रभावशाली बनी ।[1]

3। गौड़ीय सम्प्रदाय के प्रमुख कवि एवं आचार्य :

चैतन्य मत के प्रधान थे - स्वयं चैतन्य महाप्रभु । नित्यानन्द तथा अद्वैताचार्य का भी इस मत के प्रचार-प्रसार में सर्वाधिक योगदान रहा, किन्तु गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के उत्तरी भारत में प्रसार-प्रचार का सर्वाधिक श्रेय जाता है उन छः गोस्वामियों को, जिनके नाम इस प्रकार हैं - रूप, सनातन, रघुनाथ भट्ट, रघुनाथ दास, गोपाल भट्ट और जीव गोस्वामी । ये सभी वृन्दावन में रहते थे और वहीं रहकर उन्होंने चैतन्य मत का प्रचार किया व ग्रन्थ रचना की । इस प्रकार यद्यपि चैतन्य बंगाल के निवासी थे परन्तु उनके अनुयायियों ।गोस्वामियों। ने वृन्दावन को ही अपना कर्म क्षेत्र बनाया । इस सम्प्रदाय के प्रमुख ग्रन्थ तथा ग्रन्थकारों के नाम इस प्रकार हैं -

---

1- बंगला साहित्य का संक्षिप्त इतिहास - पृ० 145

1। रूप गोस्वामी -- ललितमाधव, विदग्ध माधव, भक्ति रसामृत सिन्धु, लघु भागवत्, उज्जवल नीलमणि, हँसदूत तथा उद्धवदूत आदि ।

2। सनातन गोस्वामी -- हरिभक्ति विलास, वैष्णव तोषिणी या वृहत्ततोषिणी ।जो कि भागवत् की व्याख्या है। तथा भागवतामृत आदि ।

3। रघुनाथजी गोस्वामी -- विलाप, कुसुमान्जलि, राधाष्टक, नामाष्टक, उत्कण्ठदशक, अभीष्ट प्रार्थनाष्टक, अभीष्ट सूचना, शचीनंदन शतक आदि मुख्य हैं ।

4। जीवगोस्वामी -- षट सन्दर्भ, कष्णार्चनदीपिका, क्रमसंदर्भ दुर्गम संगमनी आदि । चैतन्य महाप्रभु द्वारा दक्षिण से लाये गये "कृष्ण-कर्णामृत" तथा ब्रह्मसंहिता की भी इन्होंने पाण्डित्य पूर्ण टीकाएं की थीं ।

चैतन्य मत में उपर्युक्त विद्वानों के अतिरिक्त कृष्णदास कविराज का नाम उल्लेखनीय है । "चैतन्य चरितामृत" इनकी प्रसिद्ध रचना है । आगे हम गौड़ीय सम्प्रदाय पर बौद्ध-धर्म का प्रभाव खोजने का प्रयत्न करेंगे ।

4। <u>बौद्ध-धर्म का प्रभाव</u> :

निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत यह प्रभाव खोजा जा सकता है -

1। <u>सन्यास का समर्थन</u> :- बौद्ध धर्म सन्यास प्रधान धर्म है । यह निवृत्ति प्रधान धर्म रहा और निवृत्ति विचारधारा संन्यास मार्ग की समर्थक रही । गौड़ीय सम्प्रदाय में भी संन्यास की प्रवृत्ति पाई जाती है । स्वयं चैतन्य महाप्रभु - "वृद्ध माता तथा तरूणी पत्नी के स्नेह तथा ममत्व को तिलान्जलि देकर भगवान की भक्ति के प्रचार में जुट गए ।[1] चैतन्य मत के विषय में डॉ0 आर0जी0 भण्डारकर लिखते हैं - "ये लोग वैरागी हैं । इस

1- आचार्य बलदेव उपाध्याय, वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त - पृ0 419

मत की एक शाखा में वैरागी और वैरागिनियाँ दोनों ही होते थे। वे एक ही मठ में रहा करते थे तथा इनके बीच केवल आध्यात्मिक सम्बन्ध रहता था।[1] उपर्युक्त तथ्य बौद्ध धर्म में दीक्षित भिक्षु तथा भिक्षुणियों का स्मरण कराता है। जैसा कि हम जानते हैं, बौद्ध-धर्म के अन्तर्गत स्त्री व पुरुष दोनों को संन्यास लेने की अनुमति थी। अतः यही संन्यास प्रवृत्ति चैतन्यमत में भी लक्षित होती है।

2। <u>वर्णाश्रम व्यवस्था की अमान्यता</u> :- ब्राह्मण परम्परा में वर्ण व्यवस्था का पालन एक आवश्यक परम्परा रही, किन्तु श्रमण परम्परा में इसकी सर्वथा अवहेलना की गयी। चैतन्यमत में भी यह वर्णाश्रम व्यवस्था देखने में नहीं आती। अर्थात् इस मत में भी इस व्यवस्था की उपेक्षा की गई। यह प्रसिद्ध है कि चैतन्य मत की सार्वजनिक उन्नति के समय में बौद्ध धर्म के भिक्षु तथा भिक्षुणियाँ "नेड़ा-नेड़ी" के रूप में वैष्णव समाज में गृहीत कर लिये गये और इस प्रसंग में नित्यानन्द महाप्रभु के पुत्र वीरभद्र के प्रयत्न की महत्ती प्रशंसा सुनी जाती है। जिन्होंने नेड़ा-नेड़ी लोगों का उद्धार किया।[2] नित्यानन्द जो कि चैतन्य के अति-प्रिय पात्र थे, वे जाति के ब्राह्मण थे, परन्तु अवधूत बन जाने के कारण जाति भेद नहीं मानते थे। × × × × × उन्होंने बंगाल के अनेक बौद्धों और निम्न जाति के हिन्दुओं को वैष्णववाद में संपरिवर्तित किया।[3]

चैतन्य महाप्रभु और उनके सहकारियों ने मुसलमान, अन्त्यज और निम्न वर्ग के लोगों को भी कृष्णभक्ति की शिक्षा दी थी। जगन्नाथपुरी में आज भी जाँति-पाँति का भेदभाव नहीं है, बल्कि सभी जातियों के लोग एक पंक्ति में बैठकर जगन्नाथजी का प्रसाद ग्रहण करते हैं। यह चैतन्यमत की शिक्षा का ही परिणाम है।[4] इस मत के अनुसार सब लोग समान रूप से ईश्वरभक्ति कर

1- डॉ० आर०जी० भण्डारकर, वैष्णव, शैव तथा अन्य धर्म।
2- आचार्य बलदेव उपाध्याय, भागवत सम्प्रदाय - पृ० 495
3- डॉ० सुरेन्द्रनाथदास गुप्त, भारतीय दर्शन का इतिहास - पृ० 397
4- डॉ० प्रभुदयाल मीतल, चैतन्यमत और ब्रज साहित्य - पृ० 91

सकते हैं । भक्ति मार्ग में जाँति-पाँति और ऊँच-नीच का भेदभाव नहीं होता है । सभी भक्तजन चाहे वे किसी भी जाति कुल और धर्म के हों, भगवान श्रीकृष्ण के चरणाश्रित होने के अधिकारी हैं । चैतन्य महाप्रभु ने स्वयं कहा -

नाहं विप्रो न च नरपतिर्नापि वैश्यो न शूद्रो,
नाहं वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा ।
किन्तु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्दपूर्णामृताब्धे-
र्गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः ।।

अर्थात् मैं ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय नहीं, वैश्य या शूद्र नहीं हूँ, मैं ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासी भी नहीं हूँ । किन्तु मैं स्वयं प्रकाश निखिल परमानन्दपूर्ण सुधासिंधु स्वरूप गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण - चरणारविंद के दास का भी दासानुदास हूँ ।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म की तरह वर्ण-व्यवस्था का चैतन्यमत में भी विरोध किया गया है । श्री कृष्णदास कविराज चैतन्य चरितामृत अन्त्य-लीला परिशिष्ट चार में लिखते हैं -

नीच जाति नहे कृष्ण भजने अयोग्य ।
सत्कुल विप्र नहे भजनेर योग्य ।।
येई भजे सेइ बड़, अभक्त हीन छार ।
कृष्ण भजने नाहि जाति-कुलादि विचार ।।
दीनेर अधिक दया करे भगवान ।
कुलीन पण्डित धनीर बड़ अभिमान ।।

अर्थात् नीच जाति होने से कृष्ण भजन के अयोग्य और उच्चकुल के ब्राह्मण होने से ही उसके योग्य नहीं हो जाते । जो कृष्ण-भजन करे, वही बड़ा है । जो

1- डॉ० प्रभुदयाल मीतल - चैतन्य मत और ब्रज साहित्य - पृ० 91 से साभार ।

भक्ति शून्य है, वही नीच है । कृष्ण भजन में जाति और कुल का विचार नहीं है । भगवान जितनी दया दीनों पर करते हैं, उतनी कुलीन पंडित धनी लोगों पर नहीं, क्योंकि उन्हें अपने कुल पांडित्य धन का बड़ा अभिमान होता है ।[1]

तात्पर्य यह है कि चैतन्य मत में वर्णावस्था का स्पष्ट विरोध है जो कि बौद्ध धर्म का प्रभाव लक्षित होता है ।

3। <u>अवतारवाद तथा मूर्ति पूजा</u> :- जैसा कि हम जानते हैं, बौद्ध धर्म में महायान के उदय के साथ-साथ बौद्धों में अवतारवाद तथा मूर्ति-पूजा का प्रारम्भ हो गया था । कालान्तर में महात्मा बुद्ध जो कि एक ऐतिहासिक महापुरुष थे, उन्हें अवतार माना गया । साथ ही उनके अनेक जन्मों को स्वीकृत किया जाने लगा । यह गुरू को ईश्वर रूप में प्रतिष्ठित करने की परम्परा का प्रारम्भ था । यही अवतारवाद हमें परवर्ती वैष्णव-सम्प्रदायों में भी देखने को मिलता है । महायानियों ने महात्मा बुद्ध की मूर्ति-पूजा प्रारम्भ कर दी थी । वैष्णवों में मूर्तिपूजा का अपना विशेष महत्व रहा है । चैतन्य महाप्रभु को कालान्तर में उनके अनुयायियों के द्वारा (गौड़ीय सम्प्रदाय के अनुयायियों के द्वारा) अवतार रूप में स्वीकारा जाने लगा - "चैतन्य के जीवित काल में ही बहुत से लोगों को उनके अवतार होने के विश्वास हो गया था"।[2] उनके अनुसार चैतन्य केवल कृष्ण ही नहीं हैं - राम - कृष्ण, हिरण्यकश्यप इत्यादि सब हैं । वे जानकीवल्लभ राम थे, जिन्होंने सेतु बाँधा था, ये चैतन्य धनुर्धारी राम हैं, जिन्होंने रावण का वध किया था । ये चैतन्य अखिल भुवन पति हैं । सतयुग, त्रेता, द्वापर सब में अवतार लेकर ध्यान, यज्ञ, पूजा का प्रकाशन किया और अब चैतन्य रूप में आये हैं ।[3] "वंशी-शिक्षा" के अनुसार वंशीदास ने चैतन्य को मूर्तिपूजा का प्रचार किया था ।उन्होंने चैतन्य की धर्मपत्नी श्री विष्णुप्रिया देवी के लिए चैतन्य की काष्ठमूर्ति बनाई और नरहरि ने चैतन्य के विषय में बहुत से पदों को बनाया तथा चैतन्य पूजा के विधि-विधानों को भी व्यवस्थित किया ।[4]

1- डॉ० प्रभुदयाल मीतल - चैतन्य मत और व्रज साहित्य - पृ० 94 से साभार ।
2- आचार्य बलदेव उपाध्याय, वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त - पृ० 433
3- डॉ० रत्नकुमारी, 16वीं शती के हिन्दी व बंगाली वैष्णव कवि - पृ० 173
4- वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त - पृ० 433

इस प्रकार अवतारवाद और मूर्ति पूजा बौद्ध धर्म की तरह यहाँ भी स्वीकार्य है जो कि बौद्ध-धर्म का प्रभाव लक्षित होता है।

4। गुरू की सर्वोच्यता :- गुरू को ईश्वर रूप में स्वीकार करते हुए दोनों में अभेद मानना बौद्धों की महायानी शाखा में प्रारम्भ हुआ था। शास्ता ।गुरू। वहाँ सर्वोपरि है। यही गुरू को सर्वोच्च पद देने का प्रचलन वैष्णव सम्प्रदायों में यथावत चलता रहा। गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के अन्तर्गत भी गुरू ।चैतन्य। तथा ईश्वर ।कृष्ण। को एक ही स्थान प्राप्त है। उनके अनुसार कृष्ण जो भगवान हैं, पूर्णज्ञान, पूर्णानन्द एवं परम तत्व हैं, वही कृष्ण चैतन्य देव के रूप में अवतरित हुए हैं। अर्थात् चैतन्य परमतत्व हैं[1]

स्वयं भगवान कृष्ण कृष्ण परमतत्व।
पूर्णज्ञान पूर्णानन्द परम महत्व।।
नन्दसुत बलि जारि, भागवते गाइ।
सेइ कृष्ण अवतीर्ण चैतन्य गोंसाञि।। ।चैतन्य चरितामृत।

इसी प्रकार और भी[2] -

चैतन्य गोसाञिर एइ तत्व निरूपण।
स्वयं भगवान चैतन्य ब्रजेन्द्रनंदन।। ।चैतन्य चरितामृत आदिलीला।

देवताओं के रूप में गुरूओं की पूजा इस मत की विशेषता है।[3] इस बात का प्रमाण मथुरा वृन्दावन में चैतन्य के अनुयायियों के मन्दिर हैं तथा इनके तीन प्रधान मन्दिर बंगाल में हैं। एक नदिया में चैतन्य का, दूसरा अम्बिका में नित्यानन्द का तथा अग्रद्वीप में गोपीनाथ का।[4] उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट संकेत मिलता है कि गुरू को दैवत्व प्रदान करके उनकी मन्दिरों में मूर्तियाँ स्थापित करके पूजा अर्चना करना बौद्ध प्रभाव है।

1- 16 वीं शती के हिन्दी व बंगाली कवि - पृ0 175
2- 16 वीं शती के हिन्दी व बंगाली कवि - पृ0 175
3- डॉ0 आर0जी0 भण्डारकर, वैष्णव शैव तथा अन्य धर्म - पृ0 128
4- डॉ0 आर0जी0 भण्डारकर, वैष्णव शैव तथा अन्य धर्म - पृ0 128

5। दुःखवाद अथवा निराशावाद :- संन्यास प्रधान सम्प्रदायों में जीवन के प्रति निराशा का दृष्टिकोण प्रारम्भ से रहा है। भौतिक जगत के प्रति यही निराशा का दृष्टिकोण संन्यास की प्रेरणा देता है। यह प्रवृत्ति व्यक्ति को सामाजिक दायित्वों से विमुख कर देती है। इसी प्रवृत्ति का दर्शन गौड़ीय सम्प्रदाय में स्वयं चैतन्य के जीवन में हो जाता है। 22 वर्ष की अवस्था में उनका अपने आश्रितों (वृद्ध माता व युवा पत्नी) को छोड़कर संन्यासी हो जाना जीवन के प्रति चैतन्य के नैराश्य के दृष्टिकोण को दर्शाता है। यह निराशावाद, क्षणिकवाद बौद्ध धर्म के मूल में रहा है। चैतन्य देव द्वारा कोई ग्रन्थ रचना नहीं की गई। मात्र उनके आठ पदों का एक संग्रह है जो "शिक्षाष्टक" के नाम से विश्रुत है। उसमें से एक दो उदाहरण प्रसंगवश यहाँ दृष्टव्य हैं जो गौड़ीय विचारधारा में उपर्युक्त तथ्य का समर्थन करते हैं -

"न धनं न जनं न सुन्दरी कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मीश्वरे भवताद भक्तिरहैतुकी त्वयि"।।

अर्थात् - हे जगदीश। मैं न धन, न जन, न स्त्री, न विद्या चाहता हूँ, हमको निष्काम भक्ति दे।

इसी प्रकार -

"अयि नन्दतनूज किङ्करम्पतितन्माम्बिषमें भवाम्बुधौं।
कृपया निजपाद-पङ्कजस्थितधूलि सदृशं विभावय।।"

अर्थात् - हे। नन्दनन्दन, इस भवसागर में पड़े हुए हम दास को कृपा कर अपने चरण की धूलि के समान समझो।

6। शरणागति :- बौद्ध धर्म का मूल मंत्र रहा है - त्रिशरणम गमन, अर्थात् बुद्ध-धर्म-संघ की शरण में जाना (शरणागत होना)। बौद्ध धर्म में शरणागति का सर्वप्रथम महत्व है। यह शरणागति मध्यकालीन सभी वैष्णव सम्प्रदायों में

यथावत स्वीकार की गई । गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय भी इसका अपवाद न रहा । यहाँ भी ईश्वर की शरण में जाकर ही भक्त का उद्धार हो सकता है । ईश्वर रूप गुरू की शरण में ही भक्त का कल्याण संभव है । इस सम्प्रदाय के भक्त कवि श्री गदाधर भट्ट की रचना से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं जो शरणागति का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती है -

मेरी गति तुमही अनेक तोष पाऊँ ।
चरन कमल नखमनि पर चित्त-सुख बहाऊँ ।
घर-घर जो डोलौं तो हरि तुम्हें लजाऊँ ।
तुमसे प्रभु छाँडि कहा दीनन के धाऊँ ।[1]

चैतन्य के अनुसार भक्ति मार्ग के अनुयायी भक्तजनों में अतिशय दीनता, नम्रता और सहिष्णुता आदि गुणों का होना आवश्यक है । उन्हें स्वयं मान प्राप्ति का इच्छुक न होकर दूसरों को आदर-मान देना चाहिए । चैतन्य महाप्रभु कृत शिक्षाष्टक श्लोक - तीन में बताया गया है कि भक्त को तृण से भी अधिक तुच्छ और वृक्ष से भी अधिक सहनशील होना चाहिए । यही भाव शरणागति के अन्तर्गत हम महायानी बौद्ध-धर्म में देख चुके हैं । चैतन्य मत में भी सर्वात्मभावेन समर्पण ही भक्त के लिए अनिवार्य है तभी वह प्रभु का सामीप्य पा सकता है ।

7। <u>कर्मनिन्दा</u> :- बौद्ध धर्म के अनुसार कर्म मनुष्य को बन्धन में बाँधने वाले हैं । वे उसकी मुक्ति (मोक्ष) में बाधक बनते हैं । अतः कर्मों का त्याग संन्यासी के लिए अनिवार्य है । सांसारिक कर्म-बन्धन से मुक्ति के लिए मनुष्य को इन कर्मों से स्वयं को अलग रखना चाहिए । यह कर्म निन्दा गृहस्थ धर्म की विरोधी है । वैदिक धर्म में व्यक्ति के भाग्य का निर्णय उसके अच्छे बुरे कर्मों से ही होता है और अपने पुरुषार्थ से वह स्वार्थ और परमार्थ का, इहलोक

1- ब्रजमाधुरी सार - पृ० 107, यहाँ डॉ० विश्वम्भरनाथ शुक्ल, हिन्दी कृष्ण-भक्ति काव्य पर श्रीमद् भागवत का प्रभाव - पृ० 250 से साभार ।

व परलोक को अपने अधीन करने में समर्थ होता है किन्तु संन्यास की परम्परा इन कर्म-बन्धनों से मुक्ति की बात करती है, क्योंकि कर्मबन्धन में पड़ा व्यक्ति इनके अनुसार भवसागर को पार नहीं कर पाता, उसका मोक्ष नहीं होता। अतः व्यक्ति को चाहिए कि वह कर्म त्याग कर मात्र अपने मोक्ष का उपाय करें। स्पष्ट ही यह व्यक्तिवादी चिन्तन है। वैदिक धर्म कहीं भी गृहस्थ जीवन में कर्मों के त्याग की बात का समर्थन नहीं करता। वहाँ बौद्धों की तरह वैयक्तिक चिन्तन नहीं अपितु सार्वजनिक हित की बात का समर्थन है, जबकि संन्यास परम्परा में व्यक्ति मात्र अपने उद्धार की बात सोच कर कर्तव्यों से विमुख हो जाता है। कृष्णदास कविराज कर्म को त्याज्य बताते हैं। क्योंकि इनके अनुसार कर्म में रति रहने से कृष्ण की ओर प्रेम नहीं होता -

कर्मनिन्दा, कर्ममत्याग सर्वशास्त्रे कहे।
कर्मे हे ते प्रेम भक्ति कृष्ण कभु नहे॥ (चैतन्य चरितामृत - परि० 9)

अतः इन लोगों की दृष्टि में कर्म वही सार्थक होता है जो प्रभु-प्रेम (या रागानुगा भक्ति) में सहायक हो, या उससे सम्बन्धित हो। लौकिक सभी कर्म त्याज्य होते हैं।

8। <u>कामनिन्दा</u> :- बौद्धिक-धर्म के अन्तर्गत कामनिन्दा (काम-तण्हा, भव तण्हा व विभव तण्हा) से तात्पर्य है कि सभी प्रकार की कामनाओं से व्यक्ति को विमुख हो जाना चाहिए। कामनाएँ व्यक्ति को कर्मबन्धन में डालती हैं और वह एक के बाद एक कामनाओं की पूर्ति में लगा हुआ कभी भी इस भव चक्र से निकल नहीं पाता। कामना मात्र को इन्होंने तृष्णा कहा। और इन तृष्णा की पूर्ति व्यक्ति कर नहीं पाता व इन्हीं में फँसा रहता है। इसलिए कामना रहित होना व्यक्ति के लिए अनिवार्य है। इनके न रहने पर ही व्यक्ति कर्मों से भी मुक्त रहेगा और भक्ति की ओर अग्रसर होगा। बौद्धों के अनुसार तृष्णा ही सबसे बड़ा बन्धन है जो जीवों को संसार से बाँधे रखती है। ये ही तृष्णाएँ (कामनाएँ) दुःख का अनुभव कराती हैं। चैतन्य सम्प्रदाय भी मात्र राधा-कृष्ण की भक्ति की ओर चित्तवृत्ति को एकाग्रचित्त करने का उपदेश देता है। इसलिए कामना मात्र के त्याग की बात करता है। चैतन्य सम्प्रदाय में भी यह कामनिन्दा इस प्रकार समर्थित है -

काम तजो धन-धाम तजो, गृह-गाम तजो मनदीप अटारी
लाज तजो, कुल काज तजो, वनराज के साज-समाज सुखारी
धाम तजो, सुत-माय तजो, निज भाय तजो जो रजोगुणधारी
विष्णु सबै तजिये, भजिये गुरु राधिका माधव । ।विष्णुदास।

कृष्णदास भी इसीलिए लिखते हैं कि सब धर्म-कर्म छोड़ कर जो राग मार्ग से भजन करेंगे वे ही कृष्ण को प्रिय हैं -

ब्रजेर निर्मल राग शुनि भक्तगण ।
रागमार्गे भजे जेन छाड़ि धर्म्म कर्म्म ।। ।चैतन्य चरितामृत।

कामना हीन होना भक्ति का प्रधान गुण है और वास्तविक भक्ति यही है । भक्ति कर्म और ज्ञान से अलग है । कृष्णदास कविराज कहते हैं - ज्ञान वैराग्य भक्ति के अंग नहीं है - "ज्ञान वैराग्य भक्तिर कभु नहे अंग" । अर्थात् भक्ति एक स्वतन्त्र साधना है, जो स्वत: पूर्ण है ।

विशेष बात यह है कि यद्यपि चैतन्य सम्प्रदाय "काम" को त्यागने की बात करता है किन्तु उस अर्थ में नहीं जिस अर्थ में वह परम्परागत रूप में मान्य है । वे मानते हैं कि काम ।प्रेम। को संसार में न खोज कर ईश्वर में देखों । अपनी चित्तवृत्ति को सांसारिक राग से विमुख कर के राधा-कृष्ण के राग में लगा देना चाहिए । उसे ।भक्त को। सांसारिक राग में न पड़ कर राधा-कृष्ण से रति रखनी चाहिए । काम के सामान्य रूप से दो अर्थ लिए जाते हैं एक व्यापक और एक संकुचित । व्यापक अर्थ में कामना मात्र को कहते हैं और संकुचित अर्थ में नर-नारी के रति सम्बन्धों को "काम" कहा जाता है । इनकी पूर्ति में नर नारी परस्पर सहायक होते हैं । संन्यासी के लिए ये दोनों प्रकार के काम त्याज्य होते हैं । इसलिए प्रथम के त्याग के लिए वह कामनाओं के दोष देखता है और इस"दोषदर्शन" के द्वारा वह उन्हें बन्धनकारण बताता है । दूसरे "काम" के त्याग के लिए वह कामुक नर-नारियों की निन्दा करता है और उसे भी बन्धनकारक बताता है । भक्ति में कामनाओं के त्याग से सम्बन्धित विचार पाये जाते हैं किन्तु रति भाव को उन्होंने भक्ति का स्थायी भाव माना है, इसलिए वे या भक्तगण लौकिक रति या नर-नारी के प्रेम को निकृष्ट बताकर उसके त्याग का समर्थन करते हैं, साथ ही स्थायी रतिभाव के आश्रय के

रूप में भगवान की स्थापना करते हैं जैसा कि प्रायः मध्यकालीन सभी कृष्णभक्ति सम्प्रदायों में हुआ है, अर्थात् उनकी दृष्टि में व्यक्ति को यदि प्रेम करना है तो वह भगवान से करे लौकिक नर-नारी से नहीं। इस अर्थ में वे अनुरागी हैं और लौकिक रति भाव के त्याग का समर्थन करने के अर्थ में वे विरागी हैं। विराग इनमें जो पाया जाता है, वह लौकिक राग के त्याग से सम्बन्धित है और इनमें जो राग पाया जाता है वह प्रभु प्रेम के रूप में है। वे इस अर्थ में सरागी हैं।

5। साधना पक्ष :

जैसा कि हम जानते हैं पूर्वी भारत में चैतन्य मत के उदय के पूर्व जो वैष्णवधर्म वहाँ फल फूल रहा था वह वैष्णव सहजिया धर्म के नाम से प्रसिद्ध था। इस सहजिया वैष्णव मत पर बौद्ध-धर्म की सहजयान शाखा का गहरा प्रभाव था। वैष्णव सहजिया मत से चैतन्य सर्वाधिक प्रभावित रहे। "बंगाल के गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय को प्रभावित करने और राधा तत्व को अधिक प्रेममय बनाने की दृष्टि से भी सहजिया वैष्णव मत का स्थान महत्वपूर्ण था।[1] कतिपय विद्वानों का मानना है कि चैतन्यमत में राधा-तत्व का जो समावेश हुआ वह चैतन्य द्वारा लाये गये बिल्वमंगल विरचित सुप्रसिद्ध ग्रंथ - कृष्णकर्णामृत" तथा ब्रह्म संहिता। के कारण हुआ जो कि वे अपनी दक्षिण भारत की यात्रा के समय अपने साथ लेकर लौटे थे। डॉ० रतिभानु सिंह के अनुसार - "मधुरोपासना के क्षेत्र में हम इसे प्रथम साम्प्रदायिक ग्रन्थ स्वीकार कर सकते हैं।"[2]

चैतन्य मत का शास्त्रीय रूप, विधि-विधानों की व्यवस्था, भक्ति शास्त्र के सिद्धान्तों का निर्णय बंगाल में न होकर सुदूर वृन्दावन में विद्वान गोस्वामियों के द्वारा किया गया। चैतन्यमत के इतिहास में वृन्दावन का यह गौरव इसलिए और

1- डॉ० रतिभानुसिंह नाहर - भक्ति आन्दोलन का अध्ययन - पृ० 218
2- डॉ० रतिभानुसिंह नाहर - भक्ति आन्दोलन का अध्ययन - पृ० 299
3- आचार्य बलदेव उपाध्याय, वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त - पृ० 433

अधिक उल्लेखनीय है कि अन्य स्थानों में रचा हुआ चैतन्य मत का साहित्य उन दिनों तब तक प्रामाणिक नहीं माना जाता था, जब तक उसे वृन्दावनस्थ विद्वत्समाज से मान्यता प्राप्त नहीं हो जाती थी ।[1] चैतन्यमत का सार निम्नलिखित प्रसिद्ध पद्य में मिलता है -

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं ।
रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूवर्गेण या कल्पिता ।।
शास्त्रं भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान ।
श्री चैतन्य महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः ।।[2]

अर्थात् - ब्रजस्वामी नन्द के पुत्र श्री कृष्ण ही आराध्यनीय भगवान हैं । उनका धाम है - वृन्दावन । ब्रज की गोपिकाओं के द्वारा की गई रमणीय उपासना ही साधकों के लिए माननीय प्रामाणिक उपासना है । श्रीमद् भागवत् निर्मल प्रमाण शास्त्र है । प्रेम ही सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ है । चैतन्य मत का यही सारांश है ।

चैतन्य मत में भी भागवत, शांण्डिल्य तथा नारद के भक्ति सूत्रों के समकक्ष भक्ति के उस रूप को सर्वश्रेष्ठ माना है जो व्यक्ति ब्रज गोपियों की श्रीकृष्ण के प्रति है, अर्थात् रागात्मिका भक्ति ही सर्वोत्तम भक्ति है । गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय की यह अपनी विशेषता है कि इन्होंने भक्ति को एक रस के रूप में साहित्य जगत में स्थापित किया । रूप गोस्वामी द्वारा विरचित ग्रन्थ "भक्ति रसामृत सिन्धु" भक्तिरस का साँगोपाँग विवेचन करता है । चैतन्य की भक्ति प्रेमा भक्ति है और यह रागात्मिका भक्ति गौड़ीय सम्प्रदाय की अपनी विशेषता रही है । गौड़ीय वैष्णव पद पदावली का सबसे बड़ा ग्रन्थ (संग्रह) - "पदकल्पतरू" जो कि वैष्णवदास द्वारा संग्रहीत है, उसमें भी अधिकांश पद राधा और कृष्ण की लीला के ही हैं । कुछ ही पद ऐसे हैं जिन्हें वन्दना कहा जा सकता है । कृष्ण व राधा के स्वरूप में भी मधुर भाव प्रमुख है ।

1- डॉ० प्रभुदयाल मीतल - चैतन्य मत और ब्रज साहित्य - पृ० 82

2- वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त - पृ० 443 से साभार ।

गौड़ीय वैष्णव मत में परकीया भाव की रागात्मिका भक्ति का प्राधान्य है और उनके अनुसार कृष्ण को पाने का एक मात्र साधन यदि है, तो यही प्रेमरूपा भक्ति है । इसी के द्वारा उन्हें ब्रज में पाया जा सकता है -

रागानुगा मार्गे तारे भजे जेइ जन ।
सेइ जन पाय ब्रजे ब्रजनन्दन ।। (चैतन्य चरितामृत)

चैतन्य सम्प्रदाय के दार्शनिक तथा भक्ति सम्बन्धी सिद्धान्तों को देखने से पता चलता है कि उनमें भक्ति के चारों भावों को लेते हुए भी मधुर भाव पर विशेष बल दिया गया है ।[1]

(1) <u>परकीया भाव</u> - जैसा कि पहले संकेत दिया जा चुका है तांत्रिक बौद्ध साधना का माधुर्य भक्ति के विकास में पूरा योगदान रहा । "बौद्ध सहजिया सम्प्रदाय वास्तव में मधुरभाव का पोषक था । बौद्धों की महायान शाखा के अन्तर्गत मंत्रयान और वज्रयान भेदों का उदय हुआ । व्रजयान का नाम ही सहजयान हुआ । योगी साधना द्वारा सहज स्थिति को प्राप्त करना चाहता है । इस सहज स्थिति की प्राप्ति गुरु कृपा से मानी जाती है । वज्रयान के प्रमुख ग्रन्थ "गुह्य समाज तंत्र में कठोर कर्मकाण्ड, नियम पालन और मर्यादाओं की सर्वथा अवहेलना करके कामनाओं के उपभोग का उपदेश दिया गया है । यही उपदेश परवर्ती वाममार्ग के लिए पथ प्रदर्शक हुआ होगा ।"[2] इसी भाव का एक उदाहरण बौद्ध सिद्ध की इन पंक्तियों में सहज देखा जा सकता है -

सासु नींदि गइल बहुआ जागे ।
कानेंट चोरि लिय कागहि भागे ।।
दिवसहिं बहू काग डर खाय ।
राति भइले काम रूप जाय ।।
ऐसन चर्या कुक्करि गाये ।
कोटि मांझ एक हियहिं समाये ।। (दोहाकोष - कुक्करिपा)

1- डॉ० दीनदयालु गुप्त - अष्टछाप तथा वल्लभ सम्प्रदाय - पृ० 58
2- हिन्दी भक्ति रसामृत सिन्धु - (सम्पा० डॉ० नगेन्द्र) - पृ० 5 भूमिका से

यहाँ परकीया स्त्री का वर्णन है जो दिन में तो कौवे से भी भय खाती है किन्तु रात्रि के समय घर के अभिभावक (सास आदि) के सो जाने पर अकेली कामरूप (असम प्रदेश के घने जँगल जो तंत्र साधना के लिए जाने जाते हैं) तक पर-पुरुष को मिलने चली जाती है । इस परकीया भाव का यहाँ समर्थन हुआ है । परकीया भाव का सर्वाधिक समर्थन मध्यकालीन कृष्ण भक्ति सम्प्रदायों में से चैतन्य सम्प्रदाय में हुआ है । चैतन्य सम्प्रदाय में राधा का वर्णन परकीया कान्ताभाव से किया गया है । राधा का परकीया रूप में वर्णन करने का मुख्य प्रयोजन प्रेमातिशय विधान कहा गया है । डॉ० स्नातक के अनुसार "परकीया-वाद की प्रतिष्ठा के बारे में दो प्रधान कारण मालूम होते हैं । पहला कारण है, बंगाल का वैष्णव धर्म और साहित्य मुख्यत: राधा-कृष्ण की प्रेमलीला का अवलम्बन करके रस समृद्ध है । जयदेव के बाद चण्डीदास और उनके बाद के अगणित वैष्णव कवियों ने राधा-कृष्ण की सूक्ष्म, असंख्य विचित्रताओं के साथ रचनाएँ प्रस्तुत की हैं । इन सभी काव्य कविताओं के भीतर से राधा का परकीयापन साहित्य में इस तरह से प्रतिष्ठित हो गया था कि तत्व की दृष्टि से उसे अस्वीकार करने या केवल श्रद्धा से ढक रखने की सूरत नहीं थी । परकीया को केवल कायिक मान लेने से तो राधा कृष्ण की प्रकट लीला (जो मुख्यत: वैष्णव साहित्य का उपजीव्य है) प्राणहीन हो जाती ।"[1] इसी प्रकार परकीया -वाद के सम्बन्ध में डॉ० शशिभूषणदास गुप्ता का विचार है कि "लगता है राधा का आलम्बन करके इस परकीयावाद की प्रतिष्ठा के पीछे तत्कालीन एक विशेष प्रकार की धर्म साधना का प्रभाव भी था । यह है नर-नारी के युगल रूप की साधना । हिन्दू तंत्र, बौद्ध तंत्र, बौद्ध सहजिया आदि के अन्दर से नर-नारी की युगल साधना की धारा प्रवाहित थी । वैष्णव सहजिया में आकर इस धारा ने एक विशेष रूप ग्रहण किया था । x x x x x सहजिया साधना में परकीया की इस प्रधानता ने परवर्तीकाल में वैष्णव धर्म की राधा के परकीयापन में विश्वास को और अधिक दृढ़ किया था, ऐसा प्रतीत होता है ।[2]

1- राधा वल्लभीय सम्प्रदाय - सिद्धान्त और साहित्य - पृ० 203

2- श्री राधा का क्रम-विकास - पृ० 235 - 236

परकीया उस स्त्री को कहा जाता है जो पर-पुरूष के प्रेम में लिप्त है और जिसके साथ उसका सामाजिक रीति से विवाह नहीं हुआ है अर्थात् जिसका सम्बन्ध समाज की मर्यादा के प्रतिकूल है। परकीया प्रेम मनुष्य के हृदय में रति जागृत कर उसे निर्मल बनाता है। यह रति ही प्रेम, स्नेह, प्रणय, राग की अवस्था को पार कर महाभाव में बदल जाती है। सहजिया वर्ग ने परकीया भावना को शारीरिक इन्द्रियों के संस्कार के लिए स्वीकार किया। इन्द्रिय वासना की तृप्ति इनका ध्येय बना। उनकी धारणा थी कि शरीर के संस्कार द्वारा ही मन पर अधिकार पाया जा सकता है। अतः साधक को अपनी इन्द्रियों पर विजय पाने के लिए पहले शारीरिक साधना करनी चाहिए। परकीया साधना के लिए इन्होंने देह को वृन्दावन माना। वृन्दावन के भू संस्थान को देह के रूप में घटित किया। चैतन्य चरितामृत में कहा गया है कि प्रेम के पथ पर बिना सखी या गुरू के सफलता नहीं मिलती। सहजिया मानते थे कि प्रकृति या मंजरी का सम्पर्क किये बिना प्रेम साधना नहीं हो सकती। प्रकृति या मंजरी स्त्री की पर्याय है।

चैतन्य चरितामृत में कहा गया है कि सभी भावों में श्रृंगार आनन्दमय है। गौरांग (चैतन्य महाप्रभु) ने भी इसे आध्यात्मिक मुक्ति के लिए स्वीकार्य किया है। सहजिया मान्यता के अनुसार बिना शारीरिक रति के ईश्वर का उत्थान नहीं हो सकता। एक मान्यता के अनुसार प्रत्येक गोस्वामी के पास भी एक मंजरी थी जिससे वे प्रेम के संस्कार प्राप्त करते थे, इनके अनुसार रूप गोस्वामी मीरा से प्रेम करते थे, रघुनाभट्ट कैरनबाई से और जीव गोस्वामी एक नाई की स्त्री से प्रेम करते थे। गोपाल भट्ट गौरीप्रिया और राव रामानन्द देवदासियों से। जयदेव और पद्मावती का सम्बन्ध यद्यपि विवाह से स्थापित हुआ था, तब भी वह परकीया प्रेम के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया जाता है।[1] परकीया प्रेम में प्रेम की उद्दाम अवस्था रहती है। स्वकीया का प्रेम रीति-रिवाजों से पुष्ट व शास्त्र सम्मत होने के कारण नीरस हो जाता है। परकीया का प्रेम

1- दे0 डा0 विजयेन्द्र स्नातक, राधा वल्लभ सम्प्रदाय, सिद्धान्त और साहित्य - पृ0 201 पर

उल्लास का स्त्रोत है । सभी बन्धनों से मुक्त होने के कारण आकर्षण और सुखदायक है । चैतन्य मत में भी यही परकीया भाव स्वीकार्य है जो बौद्धों की सहजिया परम्परा से गृहीत किया जान पड़ता है । चैतन्य चरितामृत में कृष्णदास कविराज ने परकीया रति को स्थिर किया है -

परकीया भावे अति रसेर उल्लास ।
ब्रज बिना इहार अन्यत्र नाहि वास ।।
ब्रजवधू गुणेर इह भाव निरवधि ।
तार मध्ये श्री राधार भावेर अवधि ।।
(चैतन्य चरितामृत आदिलीला - चतुर्थ परि०)

इस प्रकार चैतन्य मत में गोपी-प्रेम परकीया भाव का प्रेम है । राधा इस सम्प्रदाय में परकीया है । यह मान्यता रही है कि परकीया प्रेम में जो तीव्रता अथवा प्रेम की उद्दामता होती है, वह स्वकीया में नहीं रहती । परकीया-प्रेम प्रेम की चरम काष्ठा है । रति का मूल उद्देश्य है कृष्ण प्रियतम को सौख्यदान । यह जितना परकीया भाव में आता है, उतना स्वकीया भाव में नहीं आता । अर्थात् उतनी तीव्रता स्वकीया प्रेम में होती ही नहीं है । जल की धारा में रोक से जो तीव्रता आ जाती है, वह निर्बाध जल-गति में नहीं होती । गोपी प्रेम लोक और धर्म की सीमाओं को तोड़कर आर्यपथ का भंग करके, उच्छल बहने वाला प्रेम है । राधा परकीया है, जो समस्त परकीया भावोपासिका गोपियों में श्रेष्ठ है । कृष्ण उनके उपपति है । इसी रूप में भाव का परम उत्कर्ष माना गया है -

"अत्रैव परमोत्कर्षः श्रृंगारस्य प्रतिष्ठितः ।"[1]

बौद्ध तांत्रिकों की साधना में जो स्त्रियाँ "प्रज्ञा" रूप में तांत्रिकों के साथ होती थीं, वे प्रायः परकीया होती थी, क्योंकि ये प्रेम साधना में परकीया

1- डॉ० प्रेमस्वरूप, हिन्दी वैष्णव साहित्य में रस परिकल्पना - पृ० 194 से साभार ।

भाव को श्रेष्ठ मानते थे । चैतन्य मत पर बौद्ध सहजिया सम्प्रदाय की जिन अवशेष परम्पराओं का प्रभाव पड़ा वहाँ भी परकीया भाव की साधना प्रमुख थी । चण्डीदास, जयदेव व विद्यापति के काव्य में परकीया भाव ही स्वीकृत है जो कि बौद्ध सहजयानी परम्परा में आते हैं । कदाचित् इन्हीं सहजिया वैष्णवों की विचार-धारा से प्रभावित होकर चैतन्य ने भी परकीयाभाव की साधना को सर्वाधिक महत्व दिया । चैतन्य मत की परकीया-भक्ति राधा और गोपियों के कृष्ण-प्रेम पर आधारित है । कृष्णदास कविराज का कथन है कि परकीया भाव में रस का अधिक उल्लास है । यह परकीय भाव बौद्ध तांत्रिकों की प्रज्ञोपाय साधना के रूप में प्रचलित था, जैसा कि अनेक विद्वानों का मानना है । परकीया तत्व बौद्ध सहजयान में प्रबल रूप से व्याप्त था । जैसा कि पहले कहा जा चुका है - मध्यकाल में बंगाल ‌(पूर्वी भारत) पर बौद्ध शाक्त तंत्रवाद का प्रधान गढ़ था । वहाँ धर्म के नाम पर परकीया प्रेम का प्रचार था । बौद्ध-धर्म के सहजयान और शाक्तों के वासनामूलक प्रेम-धर्म की पृष्ठभूमि पर बंगाली वैष्णव-धर्म का विकास हुआ था । चैतन्य ने एक ओर बंगाल के लोक धर्म को वैष्णव शास्त्रोक्त रूप प्रदान किया था, और दूसरी ओर उन्होंने सहजिया पंथ के अनुयायी चण्डीदास के परकीया प्रेममूलक गीतों को भी मान्यता प्रदान की थी । इसलिए चैतन्यमत की कृष्णभक्ति में परकीया तत्व का समावेश हो गया था ।[1] चैतन्य महाप्रभु के मत की सामूहिक विचार धारा का प्रतिनिधि ग्रन्थ कृष्णदास कविराज द्वारा रचित "चैतन्य चरितामृत" है, जिसमें परकीया भक्ति का पूर्णतया समर्थन किया गया है । अतः इसमें प्रतिपादित परकीया भक्ति को ही चैतन्यमत की विशिष्ट भक्ति भावना का वास्तविक रूप मानना चाहिए, जो कि स्पष्ट ही बौद्ध सहजियानियों की परम्परा से प्रभावित विचार धारा है ।

(2) **राग-मार्ग** - चैतन्य मत में रागानुगा भक्ति को सर्वाधिक महत्व दिया गया है । रागानुगा भक्ति वैधी भक्ति से सर्वथा भिन्न है । इसमें विधि-निषेध का विचार नहीं है । इसलिए परकीया प्रेम जो श्रुति सम्मत मार्ग के प्रतिकूल

1- डॉ० प्रभुदयाल मीतल - चैतन्यमत और ब्रज साहित्य - पृ० 102

है, रागानुगा भक्ति में मान्य है । कृष्ण की भक्ति ही प्रेम-रूप है -

रागानुगा मार्गे तारे भजे जेइ जन ।
सेइ जन पाय ब्रजे ब्रजेन्द्रनंदन ।। ।चैतन्य चरितामृत।

तांत्रिक बौद्ध साधक जिसे ऋजु मार्ग ।अथवा सरल सीधा मार्ग। कहते थे, वह यही रागमार्ग था ।

मातृ न बिन्दु न रवि - शशि मण्डल, चित्ता राग स्वभावे मुंचल ।
ऋजु रे ऋजु छाड़ि ना लेहु बंक, नियरे बोधि न जाहु रे लंक ।।
हाथेइ कंकण ना लेहु दर्पण, अपने आपा बूझउ निज मन ।
पारे-वारे सोई मादई, दुर्जन संगे अवसर जाई ।
वाम दहिन जो खाल-विखाला, सरह भने बापा ऋजु बाटे भइला ।
।सिद्ध सरहपा, हिन्दी काव्य धारा।

इस राग मार्ग से प्राप्त होने वाली रागात्मक भक्ति, भक्ति-तत्व की चरम अवस्था है, जिसे प्राप्त करना चैतन्य मत के परम भक्तों का सर्वोपरी लक्ष्य होता है । बौद्ध सहजियाओं के प्रभाव से चैतन्यमत किस प्रकार प्रभावित हुआ - इस सम्बन्ध में श्री प्रभुदयाल मीतल लिखते हैं - सहजिया विचार-धारा के अनुसार प्रत्येक साधक को अपनी विवाहिता पत्नी के अतिरिक्त एक उपपत्नी भी रखना आवश्यक होता था, ताकि वह उसे राधा व अपने को कृष्ण समझ कर अपनी वासनामयी प्रेम-लीला की साधना कर सके । राग-मार्ग में विधि निषेध का विचार न होने से सहजिया लोग चैतन्य मत में स्वीकृत सेवा पूजा आदि धर्माचारों से भी अपने को मुक्त समझते थे । चैतन्य मत के सर्वोच्च उपास्य भगवान श्रीकृष्ण के प्रति भी सहजिया वैष्णवों की उतनी आस्था नहीं थी जितनी उन्हें इस कुत्सित साधना की प्रेरणा देनेवाले तथाकथित गुरूवों के प्रति थी । ये लोग खान-पान के बन्धन में भी बंधे हुए नहीं थे । सहजिया वैष्णवों के लिए निरामिष भोजी होना आवश्यक नहीं था । इस प्रकार स्वच्छन्दतापूर्ण आचार-विचार के प्रलोभन में पड़ कर बंगाल उड़ीसा की चैतन्य मतानुयायी जनता सहजिया पंथ में सम्मिलित होने लगी । उसी परिस्थिति में चैतन्य मत के अन्तर्गत वैरागी-वैरागिन पंथ का जन्म हुआ । सहजिया और वैरागी वैष्णवों

की हीन साधना के कारण चैतन्य मत का पतन होने लगा, और वह विचारवान व्यक्तियों की नजरों से गिर गया।"[1]

हमारे मत से भी चैतन्य मत में जो राग-साधना थी वह बौद्ध तांत्रिकों की प्रज्ञोपाय (युगनद्ध) साधना का ही रूपान्तर थी। वहाँ वह प्रज्ञोपाय के रूप में थी तो यहाँ राधा-माधव की केलि-विलास के रूप में। यह राग साधना बौद्ध तांत्रिक यानों-उपयानों व अन्त में वैष्णव सहजियाओं के माध्यम से चैतन्य मत में प्रविष्ट हुई। चैतन्य मतावलम्बी चन्द्रगोपालजी की ये पंक्तियाँ देखिए -[2]

प्रति प्रत्यूष निकुंज पुंज में, बरसत रस अधिकात।
जुगल धाम अभिराम परस्पर, छिन बिछुरे न सुहात।।
प्यारी प्रिया ओढ़ि पीताम्बर, मन ही मन मुसकात।
जुग उरोज कुंकुम लखि निज हिय, पियतम हँसत हँसात।।
मिलि सहचरी सँभारत सुन्दर निस रस चिन्ह जु गात।
श्री प्रभु "चन्द्रगोपाल" स्वामिनी, दीठि देखि बलि जात।।

और भी देखिए -

कामदेव की चित्त अति, करिवे को अभिराम।
बने बसंती बेस अज, श्री राधा घनस्याम।।
श्री राधा-घनस्याम, कूल कालिंदी ऊपर।
मधु माधव सम-भास, नवल नागरि अरु नागर।।
ब्रज वीथी अति मुदित, पाय सुन्दर विहार धर।
रसिक छबीली छल, लाडिली मान गमन कर।।
जुगल माधुरी सुभग अति, ध्यान करत आनंद नव।
श्री प्रभु "चन्द्र" प्रसन्न है, करत मलिंद मनोज्ञ रव।।[3]

1- चैतन्यमत और ब्रज साहित्य - पृ० 115 पर
2- चैतन्यमत और ब्रज साहित्य - पृ० 165 से साभार
3- चैतन्यमत और ब्रज साहित्य - पृ० 166 से साभार

उपर्युक्त पदों में भी राधा-कृष्ण की युगल क्रीडाओं का वर्णन है, इन्हीं प्रेम लीलाओं का यशोगान रागसाधना का अंग है ।

13। <u>संकीर्तन, भजन, नृत्य तथा वाद्य</u> - चैतन्य महाप्रभु को कीर्तन का पिता या प्रवर्त्तक कहा जाता है, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि यह उनसे पूर्व भी प्रचलित था । डॉ० ग्रियर्सन के मतानुसार संकीर्तन मूलत: इसाई धर्म की वस्तु है, जो भारतवर्ष में आने वाले आदिम इसाइयों के प्रभाव से हिन्दू-धर्म में आई है । विद्वानों ने इस मत का खण्डन कर सिद्ध किया है कि संकीर्तन का उद्गम स्थल भारत ही है। यह निश्चित है, बंगाली वैष्णव भक्ति पर बौद्ध-धर्म का ।महायानी बौद्ध-धर्म। काफी प्रभाव पड़ा है । नई खोजों से सिद्ध हुआ है, वैष्णव भक्ति का प्रमुख अंग नाम संकीर्तन भी मूलत: महायान मत की देन है । डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं - आचार्य क्षितिमोहन सेन ने चीन और भारत के संकीर्तनों का साम्य देख कर यह निष्कर्ष निकाला है कि महायान मत ही संकीर्तन प्रथा का मूल उत्स है ।[1]

चैतन्य महाप्रभु ने बंगाल से लेकर उड़ीसा तक भक्ति के साधनों में संकीर्तन पर विशेष बल दिया था । संकीर्तन की प्रथा चाहे बौद्ध-धर्म के महायान मत की देन हो किन्तु इसे सुसंस्कृत रूप से वैष्णव धर्मोपयोगी बनाने का श्रेय चैतन्य महाप्रभु को ही प्राप्त है ।[2] चैतन्य ने राधा एवं कृष्ण के प्रेम तथा अनन्यभाव सम्बन्धी विषयों के कीर्तनों के प्रचलन द्वारा लोगों के हृदय को जीतने का प्रयास किया था । किन्तु चैतन्य के समय से ही ब्राह्मणों द्वारा इस नृत्य गान तथा कीर्तन का विरोध किया जाता रहा । इस प्रकार के ब्राह्मणों को जो चैतन्य के विरोधी थे, वृन्दावनदास ने राक्षस तक कह डाला है । इन कर्म-काण्डी

1- डॉ० प्रभुदयाल मीतल, चैतन्य मत और ब्रज साहित्य - पृ० 92 से उद्धृत ।

2- डॉ० प्रभुदयाल मीतल, चैतन्य मत और ब्रज साहित्य - पृ० 93

ब्राह्मणों द्वारा नदिया के काजी के पास जाकर चैतन्य की संकीर्तन मण्डली को अहिन्दू पद्धति कह कर बन्द करवाने चाहने का भी वर्णन मिलता है। किन्तु ध्यान देने योग्य बात यह है कि चैतन्य से पूर्व गेय पदों की अपनी एक परम्परा चली आ रही थी, जो वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय के अन्तर्गत चण्डीदास विद्यापति जयदेव के गीतों में हमें देखने को मिल जाती है। इतना ही नहीं, पद-कीर्तन और कीर्तन मण्डलियों का प्रचलन इनसे भी पूर्व था। जैसा पहले भी कहा जा चुका है कि बौद्ध सिद्धों के पदों में गाने नाचने का उल्लेख उनके कीर्तनों के तथ्य को बताता है।[1]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि चैतन्य सम्प्रदाय को जो कीर्तन की परम्परा मिली वह बौद्ध-धर्म के सहजिया सम्प्रदाय की परम्परा से प्राप्त हुई जिसका बंगाल में अपना विशेष प्रभाव रहा। वह गाड़ीय वैष्णवों द्वारा विकसित और प्रभावशाली बनी।

141 - <u>अद्वैतभाव अथवा समरसता</u> - जैसा हमने बौद्ध सिद्धों की साधना के अन्तर्गत देखा कि वहाँ स्त्री व पुरूष, शक्ति तथा शक्तिमान अथवा प्रज्ञा व उपाय के रूप में स्वीकृत हुए और इन दोनों (प्रज्ञा + उपाय) का युगनद्ध स्वरूप साधक का साध्य माना जाने लगा। दो का एक हो जाना, महारस, समरसता, अथवा अद्वैत कहलाया। गौड़ीय सम्प्रदाय में भी रस की साधना है और वह रस है - भक्ति रस। भक्ति यहाँ ब्रजगोपिकाओं की जो कृष्ण के प्रति थी, वही स्वीकार्य है, अर्थात् परकीया प्रेम। जिस प्रकार बौद्ध तांत्रिक सम्प्रदाय सहजियाओं में यह परकीया-प्रेम स्वीकारा गया है उसी प्रकार इस सम्प्रदाय में इस प्रेम को मान्यता दी गई। "नरोत्तम आदि बंगाली भक्तों ने सहजिया सम्प्रदाय से प्रभावित होकर ही प्रेम के गीत गाये।"[2] सहजिया लोग चैतन्य के विषय में भी यह मानते हैं

1- डॉ० सत्येन्द्र, बंगला साहित्य का संक्षिप्त इतिहास - पृ० 145

2- डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठ-भूमि - पृ० 266

कि उन्होंने किसी स्त्री (योगिनी) के साथ सहज साधना की थी ।[1] बौद्ध सहजिया भी कहते थे कि बुद्ध ने गोपा के साथ सहज साधना की थी ।[2] गौड़ीय सम्प्रदाय में मान्यता है कि चैतन्य महाप्रभु कृष्ण व राधा दोनों का स्वरूप लेकर अवतरित हुए थे । इसी बात के प्रमाण में कृष्णदास अपनी चैतन्य चरितामृत में लिखते हैं कि चैतन्य देव अकेले स्वयं कृष्ण न होकर कृष्ण राधा संयुक्तावतार हैं -

तबै हासि प्रभु निज देखाल स्वरूप ।
रसराज महाभाव दुइ एक रूप ।।

यह एक में दो का लीन होना ही महाभाव है, जो बौद्ध तांत्रिकों के समरसता से साम्य रखता है । यह बौद्ध-प्रभाव कहा जा सकता है । वहाँ प्रज्ञा-करुणा का अद्वय महारस है तो यहाँ राधा-माधव का एक हो जाना महाभाव कहा गया । "चैतन्य सम्प्रदाय के अन्तर्गत इस अद्वैत भाव का समर्थन करते हुए ही कृष्णदास कविराज कहते हैं कि चैतन्य देव ने रामानन्दराय को रसराज (अर्थात् कृष्ण) और महाभाव (अर्थात् राधा) का संयुक्त रूप अपने में ही अवस्थित दिखाया ।[3] कदाचित् इसीलिए डॉ० विश्वम्भरनाथ का मानना है कि - यह कहना गलत है कि चैतन्य का परवर्ती वैष्णव सम्प्रदाय पूर्ववर्ती सहजिया साधना से कोई सम्बन्ध नहीं रखता ।[4] चूँकि इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्री चैतन्यदेव और उनके सहकारी बंगीय महानुभाव थे और इस सम्प्रदाय का जन्म एवं प्रारम्भिक प्रचार बंग प्रदेश में हुआ था, अतः इसके भक्ति तत्व पर बंगाल के शाक्त तंत्र और महायानी बौद्ध सम्प्रदायों की साधना प्रणालियों का प्रभाव होना स्वाभाविक है ।[5] एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

---

1- दे० डॉ० रतिभानुसिंह नाहर - भक्ति आन्दोलन का अध्ययन - पृ० 229
2- डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय, हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि - पृ० 266
3- दे० डॉ० रत्नकुमारी - हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि - पृ० 185
4- हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि - पृ० 267
5- डॉ० प्रभुदयाल मीतल - ब्रज के धर्म सम्प्रदायों का इतिहास - पृ० 323

एकै मन एकै सु तन, एकै चिन्ह - चिन्हार ।
प्रिय पीय के पिय प्रिया, कछू न होत विचार ।।[1]

स्पष्ट ही यह "प्रज्ञोपाय" साधना से साम्य रखता है । दो का एक रूप हो जाना बौद्धों के युगनद्ध से मेल रखता है ।

6। सारांश :

इस प्रकार अन्तर्बाह्य साक्ष्यों से प्रतिपादित होता है कि सहजयानी साधक ही कालान्तर में सहजिया और तदनन्तर सहजिया वैष्णव कहे गये । इन सहजिया वैष्णवों की ही एक प्रमुख शाखा गौड़ीय सम्प्रदाय अथवा चैतन्यमत है । अतः बौद्धों की सहजयानी शाखा से उनका परम्परागत सम्बन्ध है और हमारे विचार से तो यह भी कि जब इन सहजिया वैष्णवों ने भागवत पुराण को अपनी प्रस्थान चतुष्टयी में अंगीकार कर लिया तब ये ही, अथवा इसी परम्परा का परवर्ती संस्करण भागवत वैष्णव कहा गया । चैतन्य सम्प्रदाय में भी जीव गोस्वामी व रूप गोस्वामी द्वारा रचे गए ग्रंथ (भक्ति रसायन सिन्धु व भक्ति रसामृत) भागवत को आधार मानकर लिखे गए जो कि चैतन्य के बाद के हैं । गौड़ीय भक्ति को शास्त्रीय सम्मत सिद्ध करने की चेष्टा परवर्ती काल की है । भक्ति को शास्त्रीय श्रृंगार के समानान्तर रूप प्रदान करने में भक्ति रसामृत सिन्धु का विशेष योगदान रहा है । इसके स्वरूप में भक्ति की व्याख्या शास्त्रीय पद्धति सैसवांग पूर्ण रूप में सर्व प्रथम यहीं पाई जाती है । मध्य-कालीन कृष्ण भक्ति और मध्यकालीन श्रृंगार में एक प्रकार से अभेद भाव की स्थापना का मार्ग यहाँ से प्रशस्त होता है । आगे चलकर भक्ति में राधा भाव का जो प्रेय है उसका भक्ति व श्रृंगार दोनों में एक ही रूप मिलता है । इन्होंने ही प्रेम-लक्षणा भक्ति को शास्त्रीय श्रृंगार के समानान्तर रूप प्रदान किया । चैतन्य देव की जीवनी से यह प्रकट होता है कि एक ओर नित्यानन्द आदि अनेक शिष्यों को साथ लेकर बंग भूमि में वे कृष्ण भक्ति का प्रचार कर रहे थे और दूसरी ओर उन्हीं की प्रेरणा से

1- डॉ० प्रभुदयाल मीतल - चैतन्य मत और ब्रज साहित्य - पृ० 202

षद गोस्वामियों द्वारा कृष्णोपासना के तत्कालीन प्रमुख केन्द्र वृन्दावन में भक्ति की वही ज्योति प्रबल वेग से आलोकित की जा रही थी । "नित्यानन्दजी के पुत्र वीरचन्द्र (वीरभद्र) ने बौद्ध धर्म के अवशिष्ट आउल-बाउल, शाक्त सहजिया और समाज के निम्न स्तर के व्यक्तियों को भी वैष्णव धर्म की दीक्षा दी थी । इससे गौड़ प्रदेश में चैतन्य मत का व्यापक प्रचार हो गया ।[1]

जैसा कि संकेत किया जा चुका है, भक्ति का शास्त्रीय निरूपण करने वाले प्रसिद्ध ग्रन्थ "भक्ति रसामृत सिन्धु" तथा उज्जवल नीलमणि चैतन्य सम्प्रदाय की महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं । चैतन्यमत को दार्शनिक सम्बल एवं राधा-भाव प्रदान करने का श्रेय इन्हीं ग्रन्थों के रचनाकार रूपगोस्वामी को जाता है । तात्पर्य यह है कि भक्ति रस की स्थापना और भक्ति की रस राज श्रृंगार के समानान्तर शास्त्रीय स्वरूप का प्रतिपादन सर्वप्रथम इन्हीं षद गोस्वामियों के द्वारा सम्पन्न हुआ था । चैतन्य सम्प्रदाय की गौड़ीय भक्ति या रागानुगा भक्ति को शास्त्रीय रूप देने के लिए अथवा शास्त्र सम्मत बनाने के लिए (या पण्डित वर्ग में मान्यता प्राप्त करने के लिए) इन्हें भागवत् का सहारा लेना पड़ा और इसे इन्होंने प्रमाण ग्रन्थ माना । भागवत् में उस समय तक इस प्रकार की भक्ति (गोपी कृष्ण की अहर्निश रास-लीला या रति क्रीड़ा आदि) का समावेश हो चुका था । इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं कि भागवत के वर्तमान स्वरूप का पुर्नुद्धार बोपदेव (12 वीं शताब्दी) द्वारा हुआ । कृष्ण भक्ति के जिस रागानुगा स्वरूप में गोपीकृष्ण की अहर्निश रति क्रीडाओं को अतिशय महत्व दिया गया है, वह कृष्ण भक्ति के पूर्ववर्ती स्वरूप में उपलब्ध नहीं होता है, जैसे गीता प्रोक्त भक्ति में । यहाँ तक कि दक्षिण की भक्ति में भी परकीया भाव का समावेश नहीं है ।

इस प्रकार बंगाल क्षेत्र में वैष्णव भक्ति की परम्परा, बौद्ध सहजिया परम्परा में आने वाले भक्त कवि जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास आदि से होकर चैतन्य तक

1- प्रभुदयाल मीतल, चैतन्य मत और ब्रज साहित्य - पृ० 81

पहुँची । सोलहवीं शती में वृन्दावन के षट् गोस्वामियों के व्यापक प्रभाव में बंगाल के वैष्णव भक्ति-काव्य का विकास हुआ । सोलहवीं शती में बंगाल की वैष्णव साधना ब्रजभूमि से घनिष्ठ रूप से जुड़ गई और एक दूसरे को इस भक्ति ने प्रभावित किया । यह रागमार्गी कृष्ण भक्ति बाद में प्रायः सभी कृष्ण भक्ति सम्प्रदायों में अपना ली गई, जैसा कि हम अपने आगे के अध्ययन में विचार करेंगे । ऐतिहासिक क्रम से चैतन्य के समकालीन सम्प्रदाय के रूप में पुष्टिमार्ग का स्थान निश्चित है, इसलिए आगे के अध्याय में उसी पर विचार किया जायेगा ।